ISSN - 2231-1130
वर्ष–सप्तम् ; सितम्बर–2016

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ग्राम्य संघटन

डॉ0 आयशा फातमी*

संक्षिप्तिका –

मानव की सामूहिक तथा संघीय गतिविधियों ने ही एक संगठन के रूप में ग्रामों का विकास किया है। भारत में भी अति प्राचीन काल से ही स्थानीय सहकारी संगठनों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। भारत की ज्ञात सर्वाधिक प्राचीन सभ्यता सैन्धव सभ्यता में अन्नागारों, स्नाानागारों तथा गोदी आदि पुरातात्विक साक्ष्यों की प्राप्ति से सैन्धव जीवन में संघीय तत्वों के प्रमाण मिलते हैं। वैदिक संस्कृति निश्चित रूप से ग्रामीण संस्कृति थी । ऐसा प्रतीत होता है कि प्राक्वैदिक आर्येत्तर भारतीयों से निरन्तर संघर्ष के कारण सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से वे समूहों में रहते थे और प्रारम्भ में भूमि पर उनके कबीलों का सामूहिक अधिकार था। परवर्ती वैदिक कालीन आर्थिक जीवन के पर्याप्त विकास के साथ–साथ वैश्यों में "गण" अथवा "संघ" की व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है जो ब्राह्मण तथा क्षत्रियों की धार्मिक तथा राजनैतिक संघटक प्रवृत्तियों से अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। संभवतः असुरक्षा और आपसी सहयोग की आवश्यकता आदि कारणों से कुछ लोग कार्य / व्यवसाय मिलकर करने लगे थे और दूर देशों की यात्राएँ प्रायः समूहों में करते थे। लम्बी दूरियों और असुरक्षित सड़कों को पार करने के लिये वे एक 'निकाय' के रूप में संगठित होकर कठिनाइयों का सामना कर सकते थे। वैदिक और बौद्ध साहित्य में प्रयुक्त ग्राम, ग्रामणी, ग्रामभोजक सभा, गण, पूग आदि शब्दों से ग्रामों में संघटक प्रवृत्तियों के स्पष्ट संकेत मिलते हैं तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से इस तथ्य की पुष्टि भी हो जाती है। ग्रामों में शिल्पियों के अस्तित्व और संगठन के प्रमाण भी वैदिक साहित्य में मिलते हैं जहाँ 'श्रेष्ठि' और 'गण' शब्द बार–बार प्रयुक्त हुआ है। बौद्ध साहित्य में श्रेणियों की संख्या 18 बताई गई है। प्राचीन भारतीय ग्रामों में संघीय तत्वों के दर्शन राजनीतिक क्षेत्र में भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। राजा के चुनाव तथा कार्यप्रणाली में ग्रामीणों का महत्वपूर्ण योगदान था। वैदिक ग्राम्य जनों की प्रार्थनाओं और हार्दिक कामनाओं में भी संघीय तत्व परिलक्षित होते हैं। पूग' और 'गण शब्द संभवतः ग्रामों तथा नगरों के स्थानीय संगठनों के लिये प्रयुक्त किया जाता था।

* एसोसिएट प्रोफ़ेसर – प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, नारी शिक्षा निकेतन स्नातकोत्तर महाविद्यालय,लखनऊ

अतः स्पष्ट है कि कौटिल्य के पूर्व भी ग्रामों में संघटक प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से क्रियाशील थीं तथा ग्रामवासियों के क्रियाकलाप सहकारिता की भावना पर आधारित थे। यद्यपि कौटिल्य का समय साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के विकास का युग था तथा शक्ति के केन्द्रीकरण पर बल दिया जा रहा था। राज्य के समस्त कार्य शासन के स्पष्ट नियन्त्रण में थे तथापि स्थानीय संगठनों में संघटक तत्व भी पूर्णतया परिलक्षित होते हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र यद्यपि मुख्यतः उत्तम शासन तथा आर्थिक व्यवस्था का विवरण प्रस्तुत करता है, तथापि इससे हमे तत्कालीन संघीय गतिविधियों का भी ज्ञान प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्राचीन भारत के ग्रामों में पायी जाने वाली संघीय गतिविधियों एवं संघटनात्मक प्रवृत्तियों का अध्ययन करने की चेष्टा की गई हैं ।

मुख्य बिन्दु– कौटिल्य, अर्थशास्त्र, ग्राम, संघटन, सहकारिता

मानव में सहकारिता की भावना एक सामाजिक वृत्ति है। आदिकाल से ही यह वृत्ति किसी न किसी रूप में मानव समाज में विद्यमान रही है। मनुष्य की प्रकृति और उसके वातावरण ने उसे सक्रिय होकर संगठन के रूप में कार्य करने को प्रेरित किया है। मानव की सामूहिक तथा संघीय गतिविधियों ने ही एक संगठन के रूप में ग्रामों का विकास किया है। भारत में भी अति प्राचीन काल से ही स्थानीय सहकारी संगठनों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। यद्यपि प्रस्तुत शोध पत्र में कौटिल्य द्वारा लिखित अर्थशास्त्र में ग्रामीण संगठन एवं उनमें विद्यमान संघटनात्मक प्रवृत्तियों का अध्ययन करने की चेष्टा की गई है, तथापि विषय को भलीभाँति समझने के लिए कौटिल्य के पूर्व भारत के ग्रामों में पायी जाने वाली संघीय गतिविधियों से भी परिचित होना आवश्यक प्रतीत होता है जिससे विषय का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

एक सामाजिक संगठन के रूप में ग्रामों की उत्पत्ति के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता है। भारत की ज्ञात सर्वाधिक प्राचीन सभ्यता सैन्धव सभ्यता में नगरों के पुरातात्विक प्रमाणों के साथ–साथ भारी मात्रा में ग्रामीण सभ्यता के लक्षण भी मिलते हैं जो कृषि एवं व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न थे। अन्नागारों, स्नाानागारों तथा गोदी आदि

पुरातात्विक साक्ष्यों की प्राप्ति से सैन्धव जीवन में संघीय तत्वों के प्रमाण मिलते हैं।[1] वस्तुतः सैन्धव सभ्यता की विशाल जनसंख्या का भरण–पोषण बड़े पैमाने पर कृषि के बिना संभव नहीं था जिनका भण्डारण अन्नागारों में किया जाता रहा होगा। इस काल का व्यापारिक विकास भी अप्रत्यक्ष रूप से कृषि की उन्नत स्थिति का परिचायक है।[2]

वैदिक संस्कृति निश्चित रूप से ग्रामीण संस्कृति थी जो मुख्यतः कृषि और पशुपालन पर आधारित थी। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राक्वैदिक आर्येत्तर भारतीयों से निरन्तर संघर्ष के कारण सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से वे समूहों में रहते थे और प्रारम्भ में भूमि पर उनके कबीलों का सामूहिक अधिकार था।[3] गाँवों के चरागाहों, पोखरों, वनों एवं मार्गों पर सभी का अधिकार था।[4] वैदिक ग्राम्य जनों की संघटक प्रवृत्तियाँ सर्वप्रथम आर्थिक क्षेत्र में दिखाई देती है। वृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार– "ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – मानवीय समाज में इन चारों वर्गों के अनुरूप ब्रह्म ने देवताओं में भी ऐसे वर्गों का निर्माण किया, किन्तु प्रथम दो वर्गों के निर्माण से ब्रह्म संतुष्ट नहीं हुए। क्योंकि ये दोनों सम्पत्ति का अर्जन नहीं कर सकते थे, अतः वैश्यों की उत्पत्ति की गई जो गणशः कहलाए क्योंकि व्यक्तिगत प्रयास से नहीं अपितु सहकारिता के द्वारा ही वे सम्पत्ति का अर्जन करने में समर्थ हो सकत थे।"[5] इस प्रसंग से परवर्ती वैदिक कालीन आर्थिक जीवन के पर्याप्त विकास के साथ–साथ वैश्यों में "गण" अथवा "संघ" की व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है जो ब्राह्मण तथा क्षत्रियों की धार्मिक तथा राजनैतिक संघटक प्रवृत्तियों से अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। संभवतः असुरक्षा और आपसी सहयोग की आवश्यकता आदि कारणों से कुछ लोग कार्य/व्यवसाय मिलकर करने लगे थे और दूर देशों की यात्राएँ प्रायः समूहों में करते थे। लम्बी दूरियों और असुरक्षित सड़कों को पार करने के लिये वे एक 'निकाय' के रूप में संगठित होकर कठिनाइयों का सामना कर सकते थे। वैदिक और बौद्ध साहित्य में प्रयुक्त ग्राम,[6] ग्रामणी,[7] ग्रामभोजक,[8] सभा,[9] गण,[10] पूग[11] आदि शब्दों से ग्रामों में संघटक प्रवृत्तियों के स्पष्ट संकेत मिलते हैं तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से इस

तथ्य की पुष्टि भी हो जाती है।[12] सत्तिगुम्ब जातक[13] में एक वयोवृद्ध नेता के अधीन पाँच सौ लुटेरों वाले गाँव की चर्चा है। इन लुटेरों के संगठन का प्रतिरोध व्यापारियों के एक ऐसे ही संगठन द्वारा किया गया।[14] 'पणि' शब्द ऋग्वेद में बार–बार आया है।[15] एक ऋचा में देवताओं के पणियों पर आक्रमण तथा उनके संहार का उल्लेख है।[16] इस प्रकार जातकों में उल्लिखित इस प्रकार की संस्था की प्राचीनता ऋग्वेद तक ले जायी जा सकती है। ग्रामों में शिल्पियों के अस्तित्व और संगठन के प्रमाण भी वैदिक साहित्य में मिलते हैं जहाँ 'श्रेष्ठि'[17] और 'गण'[18] शब्द बार–बार प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार भारतीय ग्रामीण समाज में संघटक प्रवृत्ति संभवतः प्रारंभिक वैदिक काल से तथा निश्चित रूप से परवर्ती वैदिक काल से विद्यमान रही है। बौद्ध साहित्य में श्रेणियों की संख्या 18 बताई गई है।[19] नगर की सड़कों, खास वीथियों तथा समूचे गाँव में एक ही वर्ग के शिल्पियों को बसाने के साक्ष्य मिलते हैं।[20]

प्राचीन भारतीय ग्रामों में संघीय तत्वों के दर्शन राजनीतिक क्षेत्र में भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। राजा के चुनाव[21] तथा कार्यप्रणाली में ग्रामीणों का महत्वपूर्ण योगदान था।[22] पंचकरू जातक तथा तेलपत्त जातक के अनुसार, बोधिसत्व को प्रजा ने राजा चुना था।[23] महावग्ग[24] से ज्ञात होता है कि बिम्बिसार के राज्य में 80,000 ग्राम थे तथा उसने 80,000 ग्रामिकों की एक 'सभा' का आयोजन किया था। राज्य के प्रत्येक ग्राम में एक–एक प्रतिनिधि से बनी यह सभा प्राचीनतम संस्था का अवशेष प्रतीत होती है। अयोध्याकाण्ड[25] से ज्ञात होता है कि राजा दशरथ ने राम को युवराज अभिषिक्त करने हेतु अपने राज्य के नगरों तथा ग्रामों के प्रमुख व्यक्तियों को एक सभा में आमंत्रित किया[26] और उनके निर्णय को स्वीकार किया।[27] वैदिक ग्राम्य जनों की प्रार्थनाओं और हार्दिक कामनाओं में भी संघीय तत्व परिलक्षित होते हैं। अथर्ववेद में कहा गया है – "पृथ्वी पर जो गाँव, अरण्य और सभाएं हैं, जो संग्राम और समितियाँ हैं, उसमें हम चारू भाषण करें।[28] ऋग्वेद के अनुसार – "एकत्र हो, मिलकर भाषण करो, तुम्हारे विचार समान हो............, तुम्हारा व्रत समान हो और तुम्हारा चित्त समान हो। सबके विचार समान हो जिससे सब

प्रसन्नतापूर्वक सहमत हो सकें।"[29] सभा के विषय में वाजसनेयी संहिता में दो बार पश्चाताप संबंधी विलक्षण नियम[30] सभा के कार्य में मनोरंजक प्रकाश डालते हैं – "हम ग्राम, वन तथा सभा में किये गये अपने प्रत्येक पापकर्म का प्रायश्चित यज्ञ द्वारा करते हैं"।

एक प्रमुख के तत्वाधान में राजनीतिक इकाई के रूप में ग्राम के संगठन का उल्लेख जातक कथाओं में मिलता है। खरस्सर जातक से ज्ञात होता है कि कर एकत्र करना तथा स्थानीय पुरूषों की सहायता से लुटेरों के अत्याचारों से ग्राम की रक्षा करना 'ग्रामभोजक' का कर्तव्य था।[31] उभतोभट्ठ जातक में ग्रामभोजकों की न्यायिक शक्तियों का उल्लेख प्राप्त होता है।[32] यद्यपि ग्रामणी के हाथ में पर्याप्त कार्यकारिणी तथा न्यायिक शक्तियाँ थीं तथापि 'जनमत' उनके निर्णयों पर एक महान तथा सक्षम नियन्त्रक का काम करता था। पानीय जातक से ज्ञात होता है कि काशीराज्य के दो ग्रामभोजकों ने क्रमशः पशुवध और तीक्ष्ण मद्य के विक्रय पर प्रतिबंध लगाया किन्तु जनता के प्रतिवाद के कारण इन दोनों आदेशों को रद्द करना पड़ा।[33] गहपति जातक के अनुसार एक दुर्भिक्ष के समय ग्रामीणों ने एकत्र होकर अपने मुखिया से सहायता माँगी।[34] 'पूग'[35] और 'गण'[36] शब्द संभवतः ग्रामों तथा नगरों के स्थानीय संगठनों के लिये प्रयुक्त किया जाता था।

अतः स्पष्ट है कि कौटिल्य के पूर्व भी ग्रामों में संघटक प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से क्रियाशील थीं तथा ग्रामवासियों के क्रियाकलाप सहकारिता की भावना पर आधारित थे। यद्यपि कौटिल्य का समय साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के विकास का युग था तथा शक्ति के केन्द्रीकरण पर बल दिया जा रहा था। राज्य के समस्त कार्य शासन के स्पष्ट नियन्त्रण में थे तथापि स्थानीय संगठनों में संघटक तत्व भी पूर्णतया परिलक्षित होते हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र यद्यपि मुख्यतः उत्तम शासन तथा आर्थिक व्यवस्था का विवरण प्रस्तुत करता है, तथापि इससे हमे तत्कालीन संघीय गतिविधियों का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

कौटिल्य ने उत्तम शासन व्यवस्था का वर्णन करते हुए ग्राम्य संगठन

पर प्रकाश डाला है जिसमें ग्राम को सामूहिक राजनीतिक इकाई माना गया है। ये प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। कई ग्रामों के संघटन से विभिन्न नई बस्तियों का निर्माण किया गया था[37] जो इस प्रकार हैं –

शासन की न्यूनतम इकाई	– ग्राम
संग्रहण	– 10 ग्राम
खार्वटिक	– 200 ग्राम
द्रोणमुख	– 400 ग्राम
स्थानीय	– 800 ग्राम

उपर्युक्त तालिका के आधार पर स्पष्ट है कि साम्राज्य की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' थी, जिसके ऊपर 10 ग्रामों की 'संग्रहण' नामक बस्ती, 200 ग्रामों के बीच में 'खार्वटिक, 400 ग्रामों में द्रोणमुख तथा 800 ग्रामों के मध्य 'स्थानीय' नामक बस्तियों की व्यवस्था थी। संभवतः बढ़ती हुई जनसंख्या ने नई बस्तियों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी।

कौटिल्य ने नवीन गाँवों को बसाते समय कुछ विशेष बातों का ध्यान रखने की सलाह दी। यद्यपि शासन के प्रत्येक क्षेत्र में केन्द्र का नियन्त्रण था तथापि स्थानीय स्तर पर सहकारी संगठनों को राज्य की ओर से अधिकार प्रदान किये गये थे। केन्द्रीय स्तर पर शक्ति का विकेन्द्रीकरण साम्राज्यवाद के युग में संभव नही था किन्तु सामान्य जनजीवन/जनता को संघटित रूप से कार्य करने का संदेश अर्थशास्त्र में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ – "प्रत्येक जनपद में कम से कम सौ घर और अधिक से अधिक पाँच सौ घर वाले ऐसे गाँव बसाए जाएं जिसमें प्रायः शूद्र और किसान अधिक हों। एक गाँव दूसरे गाँव से कोष भर या दो कोष की दूरी से अधिक नहीं होना चाहिए यतः अवसर आने पर वे एक दूसरे की सहायता कर सके। नदी, पहाड़, जंगल, बेर के वृक्ष, खाई, तालाब, सेमल के वृक्ष, समी के वृक्ष और बरगद आदि के वृक्ष लगाकर उन बसाये हुए गाँवों की सीमा निर्धारित करें।"[38] कौटिल्य ने गाँवों में शूद्रों और किसानों की संख्या सबसे अधिक रखने का निर्देश दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजकीय आय में वृद्धि हेतु कृषि

संबंधी कार्य करने के लिए अधिक से अधिक लोगों की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति किसानों तथा शूद्रों से हो सकती थी। उसके अनुसार निम्न वर्ग के लोग ही अधिकांशतः कृषि और इससे संबंधित कार्य/व्यवसाय करते हैं; इसलिए जिस देश में/प्रदेश में उच्च वर्णों की अपेक्षा निम्न जाति के लोग अधिक संख्या में होते हैं वहाँ की अर्थव्यवस्था बेहतर होती है।[39] दो गाँवों के मध्य अधिक दूरी न होने से आवश्यकता पड़ने पर वे शीघ्रातिशीघ्र एक दूसरे की सहायता कर सकते थे। समस्याओं का समाधान स्थानीय स्तर पर ही कर लेने से गाँवों में शांति और व्यवस्था बनाए रखने में सहायता अवश्य मिलती रही होगी। गाँवों के मध्य सीमा निर्धारण की व्यवस्था से विवादों में निश्चित रूप से कमी आई होगी।

प्रत्येक गाँव का सामूहिक क्षेत्रफल, उसकी भौगोलिक स्थिति वह करमुक्त है, दान में दिया गया है अथवा कर देता है, प्रतिवर्ष होने वाली पशु तथा अनाज की पैदावार और उससे राज्य को मिलने वाले अंश आदि के विवरण को पुस्तकस्थ करने का निर्देश अर्थशास्त्र में दिया गया है। इन गाँवों को 5–5 अथवा 10–10 के संगठन में बांधकर 'गोप' नामक अधिकारी की नियुक्ति का सुझाव दिया जो राज्य की ओर से यहाँ के प्रशासन का कार्य देखे।[40] प्रत्येक गाँव एक प्रमुख के तत्वाधान में एक प्रशासनिक इकाई के रूप में कार्य करता था। गाँव का मुखिया (ग्रामणी) गाँव के प्रति उत्तरदायी होता था और ग्रामीणों के सहयोग से अपने कार्यों का निर्वहन करता था।[41] ग्रामणी अपराधियों को दण्ड दे सकता था और वह उन्हें ग्राम से बहिष्कृत कर देने तक का अधिकार रखता था, किन्तु वह अपने अधिकारों का दुरूपयोग नहीं कर सकता था।[42] राजा को अन्तिम निरीक्षण तथा निर्णय का अधिकार था।[43] गाँव में एक सार्वजनिक कोश था जिसमें कृषकों एवं ग्रामीणों से वसूले गये अर्थदण्ड से निरन्तर वृद्धि होती थी और उसे गाँव के विकास में लगाया जाता था।[44]

कौटिल्य ने गाँवों में अनुशासन और सुव्यवस्था बनाये रखने हेतु जो नियम निर्धारित किये, वे एक सक्रिय सामूहिक संगठन की ओर संकेत करते

हैं। 'धर्मस्थीय' नामक तृतीय अधिकरण के 10वें अध्याय में इस संबंध में विस्तृत विवरण मिलता है।[45]

- दूसरे की भूमि पर सीमा, पुण्यस्थान, चैत्य और देवालय बनवाने वाले अथवा पहले से धमार्थ बने हुए स्थान को गिरवी रखने वाले, बेचने अथवा बिकवाने वाले को 'मध्यम साहस' दण्ड दिया जाए और जो लोग इन कार्यों में सहायक या साक्षी बने उन्हें 'उत्तम साहस' दण्ड दिया जाये।
- मकान मालिक के न होने पर ग्रामवासी तथा अन्य धार्मिक लोग उस टूटे–फूटे धमार्थ मकान की मरम्मत कर सकते हैं।
- गांव में रहने वाला किसान यदि बीज बोने के समय बीज न बोये या खेत ही छोड़ दे तो उसे 12 पण दण्ड दिया जाये।
- जो व्यक्ति लगान देने वाले गांव के निवास को छोड़कर लगान न देने वाले गांव में बस जाने की इच्छा से प्रवेश करे उसे 'प्रथम साहस' दण्ड दिया जाये।
- एक गाँव का मुखिया चोर या व्यभिचारी के अतिरिक्त किसी दूसरे को गाँव से निकाले तो उस पर चौबीस पण दण्ड निर्धारित किया जाये। यदि सारा गाँव मिलकर निरपराधी व्यक्ति को गाँव से निकाले तो सारे गांव पर 'उत्तम साहस' दण्ड हो।
- यदि गाँव के बाहर गया हुआ व्यक्ति पुनः गाँव में बसना चाहे और मुखिया तथा गाँव वाले उसे बसने न दें तो मुखिया पर चौबीस पण और गाँव वालों पर 'उत्तम साहस' दण्ड हो।
- जब गाँव का मुखिया गाँव के किसी कार्य से बाहर जाए तो अपनी पारी के अनुसार गाँव वाले उसके साथ रहें। जो अपनी पारी में न जाए उन पर भोजन के हिसाब से डेढ़ पण जुर्माना किया जाए।

अर्थशास्त्र में गाँवों के सामुदायिक और सहकारी कार्यों में भाग लेना आवश्यक माना गया है। कौटिल्य ने सामूहिक कार्यों में सम्मिलित न होने वाले ग्रामवासियों के लिए विभिन्न प्रकार के

मुआवजे[46] निर्धारित किये हैं–

– यदि कोई किसान गाँव में आकर पंचायती या खेती आदि कार्य नहीं करता है तो सम्पूर्ण गाँव उससे यथोचित जुर्माना वसूल करे। यदि कोई व्यक्ति कार्य न करे तो कार्य के वेतन से दोगुना, पंचायती कार्यों में चंदा न देने पर चंदे का दोगुना और सामूहिक खान–पान के अवसर पर सम्मिलित न होने पर उसका दोगुना दण्ड उससे वसूला जाए।

– यदि कोई ग्रामवासी गाँव के सार्वजनिक मनोरंजन के कार्यों में अपने हिस्से का अंश न दे तो सपरिवार उसको उत्सव में प्रवेश न करने दिया जाए। यदि वे छिपकर तमाशा देखें या सुने और गाँव के सार्वजनिक हितकारी कार्यों में भाग न ले तो उससे दोगुना हिस्सा वसूल किया जाए।

– जो व्यक्ति सार्वजनिक कल्याण का सुझाव दे उसकी बात को सभी ग्रामवासी मानें। उसका तिरस्कार करने वाले व्यक्ति पर 12 पण दण्ड निर्धारित किया जाए। यदि गाँव के लोग मिलकर उस व्यक्ति को मारे–पीटे तो प्रत्येक ग्रामीण पर अपराध से दोगुना दण्ड निर्धारित किया जाए। जो लोग घातक प्रहार करें उन पर विशेष दण्ड रखा जाए।

– उन मारने वालों में यदि ब्राह्मण या उससे भी प्रतिष्ठित व्यक्ति हो तो उसे सबसे अधिक दण्डित किया जाए। यदि किसी सार्वजनिक कार्य में ब्राह्मण सम्मिलित न हो सके तो गाँव के लोग ही उस अभाव को पूरा कर दें; किन्तु अनुपस्थित रहने का जो मुआवजा ब्राह्मण की ओर निकले उसे गाँव वाले अवश्य वसूल करें।

अर्थशास्त्र के तीसरे अधिकरण के अध्याय 9 में मकान, गाँव तथा खेतों की सीमाओं के सम्बन्ध में होने वाले विवादों तथा उनके निपटारों का विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है[47] जो ग्रामवासियों के अधिकारों एवं कर्तव्यों की ओर संकेत करता है –

मकान अथवा सम्पत्ति के सम्बन्ध में –

- यदि मकान बेचना हो, तो मकान मालिक को चाहिए कि क्रमशः वह अपने कुटुम्बी, गाँव के मुखिया और धनाढ्य से पूछ ले। यदि वे खरीदने से इंकार करें तब बाहर वालों से बातचीत की जाए।
- दूसरे गाँवों के मुखिया तथा उनके चालीस कुल तक के पुरुषों को मकान के सामने ही उसकी कीमत बताई जाए। गाँवों के मुखिया तथा अन्य वृद्ध पुरुषों के सामने खेत, वन, सीमाबंध, तालाब और हौज आदि की मर्यादा के अनुसार कीमत निर्धारित की जाए।
- मकान मालिक की अनुपस्थिति में उसके मकान को नीलाम करने वाले पर चौबीस पण दण्ड किया जाए।

गाँवों की सीमा निर्धारण के विषय में –

- गाँव के किसान, ग्वाले, वृद्ध तथा बाहर के अन्य अनुभवी एक या अनेक पुरुष जो सीमा बंदी से परिचित न हो, अपना वेश बदलकर सीमा चिन्हों का पता लगाएं और तब सीमाएं निर्धारित करें। निर्णय किये हुए या बताए गये सीमा चिन्हों की अनदेखी करने पर अपराधी पर 1000 पण दण्ड किया जाए। जो सीमा की भूमि का अपहरण करे या उनके चिन्हों को काटे उसे भी यही दण्ड दिया जाए।
- जहाँ पर सीमा के चिन्ह सर्वथा मिट गये हों और निर्णय के लिये कोई आधार न दिखता हो तो राजा स्वयं इस प्रकार का सीमा विभाग करे कि किसी भी ग्रामवासी को कोई हानि न उठानी पड़े।

खेतों की सीमाओं से संबंधित –

- खेतों के झगड़े का निपटारा गाँव के मुखिया तथा वृद्ध पुरुष करें। उनके आपस में विवाद हो जाने पर धार्मिक पुरुष उसका निर्णय लें जिनको प्रजा स्वीकार करती हो, या किसी दूसरे व्यक्ति को मध्यस्थ बनाकर निर्णय लिया जाए। यदि इन दोनों अवस्थाओं में भी कोई निर्णय न हो सके तो राजा स्वयं वह भूमि अपने अधिकार में ले ले और उस सम्पत्ति को भी ले ले जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो

अथवा जनता के लाभ की दृष्टि से उसका यथोचित विभाग कर दे।

– सब तरह के विवादों का निर्णय मुखिया लोगों को करना चाहिए। चरागाह, खेती योग्य भूमि, खलिहान, मकान और घुड़साल आदि के संबंध में विवाद होने पर क्रमशः पहले को प्रधानता देते हुए निर्णय किया जाए।
– जलाशय, क्यारी तथा नाली बनाते समय यदि किसी के बीज बोये खेत का नुकसान हो जाए तो हानि के अनुसार उसका मूल्य चुकाना चाहिए।

उपर्युक्त निर्देश ग्रामवासियों के सामूहिक चरित्र को दर्शाते हैं जहाँ प्रत्येक निर्णय के पीछे ग्रामवासियों का हित निहित है। राज्य की ओर से भी इनकी संघटक प्रवृत्तियों को समय–समय पर प्रोत्साहन मिलता रहता था। कौटिल्य ने राजा को निर्देशित किया है कि "जो लोग मिलकर जनता के आराम के लिये रास्तो पर मकान बनाते हैं और अपने गाँव की शोभा बढ़ाने एवं उसकी रक्षा करने के लिए यत्नशील रहते हैं, उनके सहयोग और कल्याण की ओर राजा का ध्यान रहना चाहिए।"[48]

अर्थशास्त्र में गाँवों की अर्थव्यवस्था का प्रधान स्त्रोत 'कृषि' और 'पशुपालन' को बताया गया है। कौटिल्य के अनुसार वही देश/राज्य अच्छा है, जहाँ पर्याप्त कृषि भूमि, खाने, वन तथा पानी के स्त्रोत हों क्योंकि ये राज्य की शक्तियाँ हैं।[49] उसने राजा को निर्देश दिया कि वह अन्न, बीज, बैल और धनादि देकर किसानों की सहायता करे। अपने श्रम से बंजर भूमि को खेती योग्य बनाने वाले किसान से भूमि कभी न लें। जो किसान भूमि परती डाले रखे, उससे जमीन छीनकर किसी जरूरतमंद को दे दे। ऐसे जरूरतमंद किसान के न मिलने पर गाँव का मुखिया या व्यापारी उस जमीन पर खेती करे।[50] अर्थशास्त्र में इस बात पर बल दिया गया है कि ग्रामों में कोई नाट्यगृह एवं क्रीड़ास्थल आदि मनोरंजन के साधन नहीं होने चाहिए और न ही नर्तकों, गायकों, वादकों तथा भांडों को अपनी कला दिखाकर कृषि कार्यों में बाधा

डालनी चाहिए क्योंकि जब कृषक अबाध रूप से अपना कार्य करेंगे तो राजकोष में वृद्धि होगी और सारा देश धनधान्यपूर्ण होगा।[51] उसने व्यवस्था की कि 'समाहर्ता' की आज्ञा से राजा के गुप्तचर गांवों में जाकर खेती के आकार एवं उनकी उपज के विषय में जानकारी प्राप्त कर उसे बताएं।[52] गाँवों की कृषि योग्य भूमि की सिंचाई व्यवस्था भी सहकारी प्रवृत्तियों पर आधृत थी। राज्य की ओर से भी किसानों को पर्याप्त सहायता प्रदान करने का प्रावधान किया गया था। कौटिल्य के अनुसार अन्न आदि की उत्पत्ति के प्रमुख कारण बाँध है क्योंकि जो अन्न केवल वृस्टि होने पर ही प्राप्त हो सकते हैं, उन्हें जलाशयों और बाँधों के माध्यम से सदैव प्राप्त किया जा सकता है।[53] यदि प्रजाजन मिलकर सिंचाई के साधनों का निर्माण करें तो राजा को चाहिए कि उन्हें जलाशय के लिए भूमि, नहर के लिए रास्ता और आवश्यक साधन उपलब्ध कराये। गाँव के वे लोग जो सहकारिता के आधार पर किये जाने वाले बांध आदि के निर्माण कार्य में व्यक्तिगत रूप से भागीदार न हो सके, तो वे अपने स्थान पर नौकर तथा बैल भेज कर सहयोग कर दें।[54] स्पष्ट है कि इस प्रकार के सहकारी कार्यो में अपना सहयोग करना आवश्यक था। ऐसा न करने पर अनुपात के अनुसार उनके हिस्से का सारा खर्च लेने का प्रावधान था और कार्य समाप्ति पर न तो उन्हें उसका साझीदार समझा जाता था और न उसका लाभ उठाने दिया जाता था।[55] अर्थशास्त्र में नये तालाब और सीमाबन्ध बनवाने वाले और मरम्मत करवाने वाले व्यक्ति पर राज्य की ओर से राहत की भी व्यवस्था थी ताकि लोग उत्साहित होकर इस प्रकार के कार्य में अपना सहयोग करें। नए तड़ाग और सीमाबांध बनवाने पर 5 वर्ष तक सरकारी कर से मुक्ति तथा जीर्णोद्धार करने पर 3 वर्ष तक की सरकारी कर से मुक्ति की व्यवस्था थी।[56] कौटिल्य ने यह भी कहा कि जिन तालाबों में नदी का पानी न आता हो और कृषक रहट आदि लगाकर अपने खेतों में पानी पहुंचाता हो उनकी उपज पर राज्य को उनके सामर्थ्य के अनुसार ही कर लगाना चाहिए।[57] जिन किसानों के पास तालाब न हो, वे कुछ निश्चित रकम, उपज का कुछ अंश देकर अथवा उसके मालिक की आज्ञा से दूसरे तालाबों से पानी

ले सकते थे परन्तु उनके लिये आवश्यक था कि वे उस तालाब, रहट आदि की बराबर मरम्मत करवाते रहें। ऐसा न करने की दशा में नुकसान का दोगुना दण्ड उसे भुगतना पड़ता था।[58] खेती के लिये पानी के उचित रास्तों को रोकना और अनुचित रास्तों से जल को ले जाना प्रथम 'प्रथम साहस' दण्ड घोषित किया गया।[59]

यद्यपि मौर्यकाल में राजा का भूस्वामित्व अधिक मुखर हो गया था, किन्तु अर्थशास्त्र के कुछ संदर्भ निःसंदेह सामूहिक/सामुदायिक भूस्वामित्व का उल्लेख करते हैं जिन पर गाँव की समस्त जनता का अधिकार होता था। उदाहरणार्थ कौटिल्य ने गाँव के चारों ओर 800 अंगुल की दूरी पर स्थित भूमि पर ग्रामवासियों का सामूहिक अधिकार स्वीकार किया है।[60] खेती के लिये गाँव के लोगों को मिलकर एक 'कर्षक' नियुक्त करने की सलाह दी और सभी को उसे मजदूरी और भोजनादि देने का निर्देश दिया।[61] यह निर्देश सामूहिकता/सहकारिता का संकेत देते हैं।

कौटिल्य ने ग्राम्य अर्थव्यवस्था में कृषि के साथ–साथ पशुपालन को भी विशेष महत्व प्रदान किया है क्योंकि कृषि संबंधी कार्य/व्यवसाय पशुपालन पर ही निर्भर होते हैं। अतः गायों और ग्वालों के बाहुल्य वाले क्षेत्र को उसने श्रेष्ठ माना है।[62] और उस गाँव/क्षेत्र को आवास के लिये उपयुक्त बताया है। अर्थशास्त्र का यह कथन कि परिवार के पशुधन बँटवारे में ब्राह्मण पुत्र को बकरियाँ, क्षत्रिय को अश्व, वैश्य को गाय तथा शूद्र को भेड़ें दी जाए[63] यह दर्शाता है कि पशुपालन के व्यवसाय में सभी वर्णों के लोग लगे थे, यद्यपि शूद्रों की संख्या अधिक रही होगी। पशुओं की उचित देखभाल हेतु यद्यपि राज्य की ओर से अधिकारी नियुक्त थे और उन पर राज्य की ओर से कर निर्धारित था[64] तथापि 'ग्रामदेवता' के नाम पर छोड़े गये सांड़/10 दिन की ब्याई गाय और गायों के साथ रहने वाले बछड़ों पर कोई कर नहीं लगाया जाता था।[65] कौटिल्य के अनुसार गाँव से 400 हाथ (600 फुट) की दूरी पर पशुओं के विश्रामादि के लिये स्तम्भों से घिरा बाड़ा बनाना चाहिए।[66] उसने चरागाह जलाने वाले व्यक्ति को उसी आग में जला देने का प्रावधान किया।[67]

यदि किसी की खड़ी खेती को किसी का जानवर चर जाए तो अन्न के नुकसान का दोगुना दाम खेत के मालिक को दिये जाने का निर्देश अर्थशास्त्र में मिलते हैं।[68]

इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि कौटिलीय गाँव के प्रत्येक क्षेत्र (यथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक) में संघटक प्रवृत्तियों के दर्शन स्पष्ट होते हैं जिनके चिन्ह आज की भारतीय गाँवों में देखे जा सकते हैं। वर्तमान समय में भी भारतीय गाँवों में संघटक भावना विद्यमान है। पंचायत के निर्णयों की मान्यता, ग्रामवृद्धों का सम्मान, सामूहिक क्रिया–कलापों की परम्परा के साथ–साथ शिक्षा के प्रचार–प्रसार के सामूहिक प्रयास, सरकारी योजनाओं/परियोजनाओं के वृहत स्तर पर क्रियान्वयन, स्वयंसेवी संगठनों के सकारात्मक कार्यों, लघु उद्योगों के विकास, नवीन तकनीकी के प्रयोग आदि ने ग्रामीण स्तर पर संघटित जीवन को और अधिक प्रभावित किया है। यद्यपि तथाकथित आधुनिक संस्कृति ने मानव संबंधों की आत्मीयता पर प्रहार किया है तथापि सहकारिता की मूल भावना पूर्णतयाः नष्ट नहीं हुई है। मनुष्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं में समस्त संसार को ही एक 'संघ' के रूप में संगठित कर दिया है। भूमण्डलीकरण का प्रभाव गाँवों में भी दिखाई दे रहा है। इस प्रक्रिया ने समस्त विश्व को ही 'वैश्विक ग्राम' में परिवर्तित कर दिया है जिसका मूल आधार परस्पर सहयोग और सहकारिता है।

संदर्भ –

1. मिश्र, श्याम मनोहर, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, 1997, पृ. 1–2
2. मिश्र, श्याम मनोहर, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, 1997, पृष्ठ 74
3. काणे, पी0वी0, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, वाल्यूम 2, भाग 2, पृष्ठ 865
4. मिश्र श्याम मनोहर, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, 1997, पृष्ठ 88
5. मिश्र श्याम मनोहर, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, 1997, पृ. 1,4,12
6. मजूमदार, आर० सी0, ए कारपोरेट लाइफ़ इन एन्शिएन्ट इण्डिया, 1969, पृष्ठ 124

7. ऋग्वेद 10, 62, 11; 10, 7, 5
8. जातक, जिल्द पृष्ठ 354, जिल्द 4, पृष्ठ 14
9. अथर्ववेद 8, 10, 5
10. विज्ञानेश्वर याज्ञवल्क्य टीका, ii. 187 (ग्रामादिजनसमूह)
11. मजूमदार, आर० सी0ए कारपोरेट लाइफ़ इन एन्शिएन्ट इण्डिया, 1969, पृष्ठ 124
12. भीटा से प्राप्त मुद्रा पर अंकित ''सहिजितिये निगमस'', मथुरा जैन अभिलेख (ल्यूडर्स लिस्ट सं0 48 एवं 69, आदि)
13. जातक, जिल्द 4, पृष्ठ 430
14. जरूदपन जातक, जातक जिल्द 2, पृष्ठ 294
15. वैदिक इन्डेक्स, पृष्ठ 471
16. वही
17. ऐतरेय ब्राह्मण 3, 30, 3; कौषीतकी 28, 6;वैदिक इन्डेक्स पृष्ठ 403 यादि
18. वाजसनेयी संहिता 16, 25; तैतरीय संहिता, 18, 10, 2 आदि
19. जातक 6, पृष्ठ 427
20. दन्तकार वीथी जातक, 1 पृष्ठ 320, 2, पृष्ठ 197; रजक वीथी जातक, 4 पृष्ठ 81; महावड्ढकिगामो जातक, 2 पृष्ठ 18; कम्मारगामो जातक, 3 पृष्ठ 281
21. अथर्ववेद, 4, 22
22. शतपथ ब्राह्मण 13, 2, 218
23. जातक जिल्द 1 क्रमशः पृष्ठ 470, 395
24. 5, 1
25. अध्याय 1, 2
26. 2, 4, 46
27. 3, 1
28. अथर्ववेद, 15, 9
29. ऋग्वेद 10 191

30. 3, 45; 20, 17
31. जातक जिल्द 1, पृष्ठ 354
32. वही, पृष्ठ 482
33. जातक, जिल्द 4, पृष्ठ 14
34. जातक, जिल्द 2, पृष्ठ 134
35. विनय पिटक (चुल्लवग 5, 52; 8, 4, 1)
36. विज्ञानेश्वर, याज्ञवल्क्य की टीका, 2, 187
37. अर्थशास्त्र , अध्याय 1, अधिकरण 2, प्रकरण, 17
38. वही
39. वही, अध्याय 11, अधिकरण 7, प्रकरण 116
40. आचार्य दीपांकर, कौटिल्य कालीन भारत, प्रयाग, 1968, पृष्ठ 114–115
41. अर्थशास्त्र, अध्याय 1, अधिकरण 2, प्रकरण 17
42. प्राचीन भारत में संघटित जीवन, अनु0 के0डी0 बाजपेयी, सागर, 1966, पृष्ठ 133–134
43. वही
44. वही
45. वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम, वाराणसी 1962, पृष्ठ 359–363
46. वही, पृष्ठ 363–64
47. वही, पृष्ठ 354–57
48. वही, पृष्ठ 365
49. अर्थशास्त्र, अधिकरण 6 प्रकरण 96, अध्याय 1
50. वही, अधिकरण 2 प्रकरण 17, अध्याय 1
51. वही, वही,
52. वही, अधिकरण 2 प्रकरण 53–54, अध्याय 35
53. वही, अधिकरण 7 प्रकरण 118, अध्याय 14
54. वही, अधिकरण 2 प्रकरण 17, अध्याय 1

ISSN - 2231-1130
वर्ष–सप्तम् ; सितम्बर–2016

55. वही, वही,
56. वही, अधिकरण 3 प्रकरण 65, अध्याय 9
57. वही, वही,
58. वही, वही,
59. वही, अधिकरण 3 प्रकरण 66, अध्याय 10
60. प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, पृश्ठ 89
61. वही,
62. अर्थशास्त्र, अधिकरण 7 प्रकरण 116, अध्याय 11
63. वही, अधिकरण 3 प्रकरण 62, अध्याय 6
64. वही, अधिकरण 2 प्रकरण 45, अध्याय 29
65. वही, अधिकरण 4 प्रकरण 66, अध्याय 10
66. वही, वही,
67. वही, अधिकरण 4 प्रकरण 86, अध्याय 11
68. वही, अधिकरण 3 प्रकरण 66, अध्याय 10